Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

सौन्दर्यसप्तशती में सांस्कृतिक तत्व

खुशबू ठाकुर
शोध–छात्रा
महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
भारत।

Article Info
Volume 3, Issue 5
Page Number: 70-79
Publication Issue :
September-October-2020

Article History
Accepted : 01 Oct 2020
Published : 10 Oct 2020

सारांश– सौन्दर्यसप्तशती में सांस्कृतिक तत्व एक बृहद विषय है। इसे एक शोध पत्र में समाहित करना छोटी सी नाव से सागर पार करने जैसा है। तथापि सांस्कृतिक तत्वों का संक्षिप्त सार गर्भित विष्लेषण किया गया है। प्रथमतः संस्कृति की मूल अवधारणाओं या सिध्दांतों का संक्षिप्त परिचय देते हुए संस्कृति के मूल संस्कारों पर विमर्श किया गया है। संस्कृति के मूल तत्वों में पुरूषार्थ चतुष्ट्य, आचार, नीति, धर्म इत्यादि विषयों का सोदाहरण प्रस्तुत करके विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य सांस्कृतिक तत्वों का विमर्श करना है और सभी तत्वों का यथानुरूप विश्लेषण करके इति श्री किया गया है।

मुख्य शब्द – सौन्दर्यसप्तशती, सांस्कृतिक,संस्कार, पुरुषार्थ, मानव, नैतिक।

मानव में सृष्टि के प्रारम्भ से ही जीवन जीने की आकांक्षा रही है और वह जीवन को सुखद बनाने के लिए सदैव प्रवृत्त रहा है। परिणामस्वरूप प्रकृति द्वारा प्रदत्त सुविधाओं से सन्तुष्ट न रहकर वह अधिक से अधिक वस्तुओं को अपने लिए उपयोगी बनाने में भी प्रयत्नशील रहा है।

मनुष्य के अजस्र प्रयत्न से ही भौतिक, नैतिक चारित्रिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास संभव बन पाया। सांस्कृतिक विकास से मनुष्य का सुव्यवस्थित जीवन बना। संस्कृति शब्द संस्कृत के सम् उपसर्ग के साथ कृ धातु में सुट् आगम पूर्वक क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ। इसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है।[1]

पं. मोतीलाल के शब्दों में संस्कृति शब्द के सम्–स्–कृति ये मुख्य पर्व विभाग हैं। इन तीन विभागों में भी मुख्य सम–कृति ये दो विभाग है।[2]

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

डॉ. रामजी उपाध्याय के अनुसार प्राकृतिक जीवन को व्यवस्थित और शालीन बनाकर सँवारना तथा जीवन में आध्यात्मिक, कलात्मक और सेवात्मक पक्ष की प्रतिष्ठा और विकास करना संस्कृति है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संस्कृति का मौलिक अर्थ सुधारना अथवा सुन्दर या पूर्ण बनाना है।[3]

डॉ. देवराज के अनुसार संस्कृति का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सृजन की क्रियाएँ समझनी चाहिए जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध बनाने वाली है।[4]

संस्कृति देश काल के अनुसार बदलती रहती है सभी संस्कृतियों में भारत की संस्कृति सबसे प्राचीन मानी जाती है। हडप्पा संस्कृति तथा मोहनजोदडों की खुदाई के पश्चात् यह मिस्र, मेसोपोटेमिया की सबसे पुरानी सभ्यताओं के समकालीन समझी जाने लगी है। प्राचीनता के साथ–साथ इसकी दूसरी विशेषता अमरता है। चीनी संस्कृति के अतिरिक्त पुरानी दुनिया की अन्य सभी मेसोपोटेमिया की सुमेरियन, असीरियन, बेबीलोनियन और खाल्दी प्रभृति तथा मिस्र ईरान, यूनान और रोम की संस्कृतियाँ काल के कराल में समा चुकी है। भारतीय संस्कृति हजार वर्ष तक काल के क्रूर थपेडों को खाती हुई आज तक जीवित है।

भारतीय संस्कृति की तीसरी विशेषता यह है कि जगद्गुरू होना है। भारतीय संस्कृति न केवल महाद्वीप सरीखे भारतवर्ष को सभ्यता का पाठ पढाया, अपितु भारत के बाहर बडे हिस्से की जंगली जातियों को सभ्य बनाया, साइबेरिया के सिंहल (श्री लंका) तक और मैडीगास्कर टापू, ईरान तथा अफगानिस्तान से प्रशांत महासागर के बोर्नियो, वाली के द्वीपों तक के विशाल भू–खण्डों पर अपना अप्रतिम प्रभाव छोडा है।

भारतीय संस्कृति सर्वांगीणता, विशालता, उदारता, प्रेम और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा अग्रणी स्थान रखती है। हमारी संस्कृति मानव मात्र के कल्याण के लिए समर्पित है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाव भवेत्।।[5]

संस्कृति से ही मनुष्य का सार्वभौमिक विकास होता है। सभ्य समाज से ही एक सुसंस्कृत समाज की स्थापना होती है। संस्कृति को दो भागों में बाँटा गया है– पहला भौतिक संस्कृति तथा दूसरा अभौतिक संस्कृति, भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत उन सभी भौतिक एवं मूर्त वस्तुओं का समावेश होता है। जिनका निर्माण मनुष्य के लिए किया है तथा जिन्हें हम देख एवं स्पर्श कर सकते है।

अभौतिक संस्कृति की मुख्य विशेषताएँ होती है– यह संस्कृति मूर्त होती है तथा इसमें निरन्तर वृद्धि होती रहती है। अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत उन सभी अभौतिक एवं अमूर्त वस्तुओं का समावेश होता है, जिनके कोई माप– तौल आकार एवं रंग आदि नही होते।

अभौतिक संस्कृति समाजीकरण एवं सीखने की प्रक्रिया द्वारा एक पीढी से दूसरी पीढी में हस्तान्तरित होती रहती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि अभौतिक संस्कृति का तात्पर्य संस्कृति के उस पक्ष में होता है जिसका कोई मूर्त रूप नहीं होता।

संस्कृति का शाब्दिक अर्थ है जो संस्कारों से परिष्कृत हो उसे संस्कृति कहते है। सर्वप्रथम हमें संस्कृति के मूल तत्त्वों में संस्कारों के सन्दर्भ में विमर्श करना होगा। संस्कार शब्द का अर्थ है शुद्धीकरण। मानव को अपने जीवन को अग्रसर करने में उसका व्यवहार, आचरण, सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त होता है। सुसंगठित तथा व्यवस्थित समाज की उन्नति मनुष्य के संस्कारों पर ही निर्भर होती है।

सनातन/हिन्दू धर्म की संस्कृति संस्कारों पर ही आधारित है। हमारे ऋषि मुनियों ने मानव जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिए संस्कारों का निर्माण किया।धार्मिक ही नही वैज्ञानिक दृष्टि से भी संस्कारों का हमारे जीवन में विशेष महत्त्व है। सर्वप्रथम संस्कारों का दिग्दर्शन हमारे उपजीव्य काव्य रामायण तथा महाभारत में प्राप्त होता है।उन महान ग्रन्थों की प्ररेणा से प्राचीन कवियों ने काव्य महाकाव्यों की रचनाएँ की–जैसे– कालिदस द्वारा प्रणीत रघुवंश, भवभूति प्रणीत उत्तररामचरितम् तथा महाभारत आश्रित नैषधीयचरितम्, किरातार्जुनीयम् महाकाव्यों की रचना हुई। जिसकी प्रासंगिकता वर्तमान समय में भी प्रचलित है।

वस्तुतः हमारे समाज में प्राचीन काल से ही संस्कारों का महत्त्व रहा है। किन्तु संस्कारों की संख्या में मनीषियों में एक मत नहीं है। गौतम धर्म सूत्र में चालीस संस्कारों का वर्णन प्राप्त होता है–

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्यन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, चार वेदव्रत, समावर्तन स्नान, अष्टका पार्वण , श्राद्ध, श्रावणी आग्रहायणी, चैत्री आवयुजी इति। महायज्ञसंस्था, अग्नयाधेय, अग्निहोत्र, दर्शपर्णमास, आग्रयण चातुर्मासय अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी वाजपेय, सप्तहविर्यज्ञ, वाजपेय, इतिरात्र अप्तोयमिइति सप्त सोमयज्ञ संस्कार।[6]

बौद्धायनगृह्यसूत्र में तेरह संस्कारों का वर्णन किया गया है। मनु के अनुसार गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त तेरह स्मार्त संस्कार है– गर्भाधान, पुंसवन,सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामधेय, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, मौजीबन्धन, केशान्त, समावर्तन, अन्त्येष्टि।[7]

इसी परम्परा में पारस्कर गृह्यसूत्र में भी तेरह संस्कारों को बताया गया है। इसके पश्चात् गोभिल गृह्यसूत्र मे दस संस्कारों का वर्णन मिलता है। संस्कार चन्द्रिका में षोडश संस्कारों को स्वीकृत किया गया है। भारतीय संस्कृति में संस्कारों की प्रधानता प्राचीन काल से ही रही है। हमारे ऋषियों ने मानव जाति के सर्वांगीण विकास एवं प्रोन्नत बनाने के लिए मुख्य सोलह संस्कारों का विधान निर्धारित किया है जो इस प्रकार है। यह संस्कार सर्वमान्य है। आज भी हमारा समाज इन निम्न संस्कारों के प्रयोग अपने–अपने परिवारों में करते है।

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्यन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुंडन, विद्यासंस्कार, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह, अन्त्येष्टि।

भारतीय परम्परा में संस्कृति के मूल तत्त्व है जैसे– संस्कार, व्रत , त्यौहार, वर्ण,आश्रम और पुरूषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)। सौन्दर्यसप्तशती का सांस्कृतिक विमर्श करना शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य है। सौन्दर्यसप्तशती हिन्दी साहित्य शिरोमणि बिहारी सतसई का सम्पूर्ण पद्यानुवाद है।

बिहारी राजाश्रित कवि थे। बिहारी एक स्थान पर नही रहे। उनका बचचन बुन्देलखण्ड में व्यतीत हुआ। तत्त्पश्चात् युवास्था का कुछ समय ब्रज में बीता तदोपरांत वह जयपुर नरेश राजाजयसिंह के आश्रय में रहे। इसलिए बिहारी के ग्रन्थ में ब्रज, बुन्देली भाषा का समावेश है। बिहारी की निपुणता हर क्षेत्र में थी वह गणित, ज्योतिष, राजनीति, लोकजीवन का ज्ञान इत्यादि क्षेत्रों में परिपक्व थे। लोकजीवन के समस्त दतार–चढाव को भली प्रकार समढते थे। बिहारी सतर्सी में कवि ने लोकजीवन के विभिन्न रंगों एवं पक्षों का बडा सुन्दर वर्णन किया है। जैसे– भारतीय संस्कृति के पर्व, नाटकीय खेल, पवंग बाजी, होलिका उत्सव एवं संस्कृति के अनेक रंगों का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि बिहारी के समय में उत्सवों का महत्त्व था। पं. प्रेमनारयण द्विवेदी जी ने बिहारी सतसई का अनुवाद करते समय संस्कृति का ज्यों का त्यों अनुवाद किया। जिससे समस्त लोक जन को बिहारी के समय की संस्कृति की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो।

अनूदित पद्य–

बिहारी सतसई में कवि ने गर्भाधान संस्कार को बताया है–

स्नात्वा सरोवरे सार्द्रवस्त्रा सङ्.कुचितेव च।

कुचयोः कृत हस्ता च हसन्ती याति तत्तटम्।[8]

मूल पद्य–

दृग थिरकौहैं, अधखुलैं, देह थकौहैं ढार।

सुरत सुखित सी देखियत, दुखित गरभ कैं भार।।[9]

स्त्रियां अपने पति के हाथों से शृङ्.गार करवाया करती थी, और इसी रति क्रीडा में वह गर्भ धारण करती थी उसी प्रसंग को कवि ने प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार से कवि ने पाणिग्रहण संस्कार का भी वर्णन किया है। जो इस प्रकार है–

अनूदित पद्य–

वध्वाः पाणिग्रहणे रोमाञ्चा द्वयोः स्वेदसलिलं च।

तेन जलेन सहैव हृदयं च समर्पितं द्वाभ्याम्।।[10]

मूल पद्य–

स्वेद सलिलु, रोमांच–कुसु गहि दुलही अरू नाथ।

दियौ हियौ सँग हाथ कैं हथलेय हीं हाथ।।[11]

हिन्दू परिवारों में धार्मिक अनुष्ठान भी होते थे। स्त्रियाँ पूजा पाठ आदि किया करती थी। गणेशचतुर्थी व्रत सबसे अधिक प्रसिद्ध था। स्त्रियां सारा दिन उपवास रखती थी, रात्रि को चन्द्रमा को अर्घ्य देकर व्रत का परायण किया जाता था। पं. प्रेमनारायण द्विवेदी जी ने अपने ग्रन्थ में भी व्रत के महत्त्व को बताया, गणेश चतुर्थी के व्रत को दर्शाते हुए निम्न अनूदित पद्य दृष्टव्य है–

अगचछाधः प्रदत्तोऽर्घो दूरं गच्छन्तु सड्.कटा।

अन्याः स्त्रियोऽपि निर्द्वन्द्वं पश्येयुः शशिनं त्विमम्।।

मूल पद्य–

दियौ अरघु, नीचैं चलौ, संकटु भानैं जाइ।

सुचिति है औरौ सबै ससिहि बिलोकैं आइ।।

त्यौहारों में फागुन के होली के त्यौहार का लोग बडी धूम–धाम से मनाया करते थे। इन त्यौहार का अत्याधिक महत्त्व था। दम्पत्ति अति हर्षोल्लास से इस खेल में मस्त होते हैं। होली त्यौहार का वर्णन द्विवेदी जी ने सौन्दर्यसप्तशती मे बडी समग्रता से किया है। नायिका जब नायक को गुलाल की मुट्ठी ताने देखती है तो आँखों में पडने के भय से चौक्कर, घूँघट से मुँह ढाँक कर, झुक जाता है, और खिलखिलाकर हँसती है। नायक बार–बार उसकी इस अदा को देखना चाहता है इसलिए मुट्ठी तानता ही है,उस पर गुलाल डालता नही है। ताकि वह बार–बार यह क्रिया करे और गुलाल डालने पर कहीं उसका भय न निकल जाए–

अनूदित पद्य–

मुखाच्छादनं सा यथा भावभड्.ग्या

करोत्याशु तिर्यक् च भूत्वाऽथ किञ्चित्।

गृहीत्वा करे कुङ्.कुमं तत्प्रियोऽस्याः

मुखे लिम्पितुं तां विभीतां करोति।।

मूल पद्य–

जज्यौं उझकि झाँपति बदनु, झुकति बिहँसि, सतराइ।

तत्यौं गुलाल–मुठी झूठी झझकावत प्यौ जाइ।।

कवि ने तीज त्यौहार का भी वर्णन किया है। तीज के दिन स्त्रियाँ नये–नये वस्त्र, आभूषण पहना करती थी। मेंहदी लगाया करती थी, परन्तु इन सब त्यौहारों, व्रतों में श्रृङ्गार भावना ही प्रमुख थी।

अनूदित पद्य–

सुसज्जिताः पर्वणि तत्सपत्न्य

आभूषणैः सद्वसनैर्नवैश्च।

एषा च चीरैरपि शोभमाना

म्लानानि तासां कुरूते मुखानि।।

मूल पद्य–

तीज–परब सौतिनु सजे भूषन बसन सरीर।

सबै मरगजे–मुँह करीं इहीं मरगजैं चीर।।

वर्ण व्यवस्था के विषय में सौन्दर्यसप्तशती में एक भी पद्य प्राप्त नही होता। क्योकिं बिहारी का समय श्रृङ्.गार परक था। किन्तु इसका अभिप्राय यह नही कि उस समय वर्ण व्यवस्था थी नही। उस समय सामंतों क युग था, वर्ण और आश्रम सामन्ती समाज की प्रमुख विशेषताएँ है। वर्ण व्यवस्था संसार के प्रत्येक सामन्ती समाज की विशेषता है। इसमें सम्पत्ति का स्वामी भू–स्वामी वर्ग होता है। संस्कृति और शिक्षा का काम पुरोहित वर्ग के हाथ में रहता है, सामन्तों के साथ उनके अधीन रहकर या उनका सहयोगी बनकर व्यापारी वर्ग काम करते थे। समाज के शेष सदस्य खेती ,कारीगरी के द्वारा उच्च वर्गों की सेवा करते है। अतः उस समय जाति सम्प्रदाय में भेदभाव होता था।

आश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। संस्कृति जीवन–सापेक्ष होती है। जीवन से कटकर संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जीवन को सुचारू रुप से चलाने, उसकी काम भावना को नियंत्रित करने के लिए भारतीय आचार्यों ने मानव के समस्त जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया है– ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम, सन्यास आश्रम। इन चारों आश्रमों का पालन करते हुए ही मनुष्य मानसिक एवं आघ्यात्मिक उन्नति कर सकता है। बिहारी के युग में गृहस्थ आश्रम को ही अपनाया गया। शेष आश्रमों की ओर ध्यान नही दिया गया।

बिहारी के समय में संयुक्त परिवार होते थे। सारे परिवार का आय का साधन एक ही होता था। घर का सबसे बडा व्यक्ति मुखिया होता था। संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति में सर्वश्रेष्ठ माने गये है । संयुक्त परिवार में सभी सदस्य एक–दूसरे की भावनाओं को समझते थे, और हमेशा परिवार

सुसंगठित रहे इसका ध्यान रखा जाता था। इसी प्रयत्न में कुलवधू की क्या दशा होती है –

वदति कुलवधूःसा नैव किञ्चिचत्कथञ्चिचत्

गृहकलहविभीता देवरस्यापि चेष्टाः।

निजगृहगतमार्जाराद्विभीता शुकीव

प्रतिदिनमतिशुष्का जायते पंजरस्था।।

मूल पद्य–

कहति न देवर की कुबत कुल–तिय कलह डराति।

पंजर–गत मंजार–ढिग सुक ज्यौं सूकाति जाति।।

नववधू की स्थिति बहुत ही शोचनीय है। देवर के खोटेपन को इसलिए छिपाती है कि कही भाई– भाई में बैर न हो जाए, पर साथ ही उसे यह भी डर है कि उसकी चुप्पी को देखकर देवर सहमति समझकर अकेले में उसका आलिगन न कर ले।

बिहारी के समय में धर्म को बाँट दिया गया था। विभिन्न सम्प्रदाय प्रचलन में थे किन्तु बिहारी ने इन सब पर ध्यान नही दिया। वह राम और कृष्ण को एक ही मानते है। इसी भावना से वह अपनी उक्तियाँ लिखा करते थे–

कथं प्रशस्तिस्तव सा मुरारे

भवेत्स्थिरा नाथ न सोऽस्मि गृद्धः।

यं तारयित्वा हि वृथाभिमानी

पश्यामि शक्तिं मम सम्मुखश्चेद्।।

मूल पद्य–

कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिवी, मुरारि।

बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहिं तारि।।

गिद्ध को तारने वाले भगवान राम थे, कृष्ण दोनों के रूपों एवं कार्यो को मिला दिया है।

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का उस देश की संस्कृति पर बहुत अधिक प्रभाव पडता है। संस्कृति अर्थ पर अवलम्बित होती है। प्रायः देखा जाता है कि जिस देश की आर्थिक दशा उन्नत एवं अच्छी होगी, उस देश की संस्कृति भी श्रेष्ठ होगी। अतः संस्कृति में अर्थ का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. एंजिल का मत है कि जब आय में वृद्धि होती है। तब आवश्यक वस्तुओं पर व्यय में प्रतिशत परिमाण घट जाता है और विलासिता पर व्यय बढ जाता है। कवि बिहारी ने भी अपने ग्रन्थ में बताया है कि जैसे–जैसे संपत्ति बढती है, विलासिता आदि ऐच्छिक विषयों में व्यय करने का उत्साह भी बढता जाता है। उससे जो सुख सम्पन्नता पूर्ण जीवन यापन करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। वह धन घटने पर भी समाप्त नहीं होती–

अनूदित पद्य–

वर्धते हि मनः पद्मं प्रवृद्धे वित्तवारिणि।

तस्मिंश्च क्षयति क्षीणे ततः शुष्यति मूलतः।।

मूल पद्य–

बढत बढत संपति–सलिलु मन–सरोज बढि जाइ।

घटत घटत सु न फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ।।

पुरूषार्थ चतुष्ट्य में काम प्रधान होता है क्योकिं प्राणी की उत्पत्ति और विकास काम पर केन्द्रित होते है। कवि बिहारी ने काम को अपनी सतसई में आद्यान्त विवेचित किया है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नही है कि सतसई काम श्रृंगार रस प्रधान है। परन्तु बिहारी को कभी हम एक दृष्टि से नही देख सकते है क्योकिं उनका ग्रन्थ बहुआयामी है तथापि हम काम पुरूषार्थ को यों देख सकते है–

अनूदित पद्य–

विधुरिव वदनं तच्छोभते कञ्चुकी सा

गगनमिव सुनीला मौक्तिकैस्तारकाभिः।

विलसति च निशेव भ्राजमाना तु बाला

शिथिलयति शरीरं स्नेहनिद्रां ददाना।।

मूल पद्य–

चुनरी स्याम सतार नभ, मुँह ससि की उनहारि।

नेहु दबावतु नींद लौं निरखि निसा सी नारि।।

कवि ने पुरूषार्थ चतुष्टय को अपने काव्य में बताया है जिसमें अंतिम है मोक्ष। मोक्ष से ही भव सागर पार करने की बात कही–

अन्ये च पापा यदि तारितास्ते

कथं त्वयाहं नहि तारणीयः।

तोषोऽथवा ते यदि बन्धनेन

कार्यस्त्वयाऽसौ स्वगुणै सुबन्धः।।

मूल पद्य–

मोहूँ दीजै मोषु, ज्यौं अनेक अधमनु दियौ।

जौ बाँधे ही तोषु, तौ बाँधौ अपनैं गुननु।।

इस पद्य में भक्त भगवान से कह रहा है कि जिस प्रकार आपने अपनी करूणा दृष्टि से संत जनों को इस संसार से मुक्त किया अर्थात् मोक्ष प्राप्त हुआ है। उसी प्रकार मुझे भी दीजिए या अपनी सगुण स्वरूप की उपासना मे लगा रखिए।

उपसंहार

सौन्दर्यसप्तशती में सांस्कृतिक तत्व एक बृहद विषय है। इसे एक शोध पत्र में समाहित करना छोटी सी नाव से सागर पार करने जैसा है। तथापि सांस्कृतिक तत्वों का संक्षिप्त सार गर्भित विष्लेषण किया गया है। प्रथमतः संस्कृति की मूल अवधारणाओं या सिध्दांतों का संक्षिप्त परिचय देते हुए संस्कृति के मूल संस्कारों पर विमर्श किया गया है। संस्कृति के मूल तत्वों में पुरूषार्थ चतुष्ट्य, आचार, नीति, धर्म इत्यादि विषयों का सोदाहरण प्रस्तुत करके विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य सांस्कृतिक तत्वों का विमर्श करना है और सभी तत्वों का यथानुरूप विश्लेषण करके इति श्री किया गया है।

संदर्भ–सूची

1. गुलाबराय, साहित्य और समीक्षा पृ. 16
2. पं. मोतीलाल शर्मा, सत निरपेक्ष संस्कृति शब्द एवं सत्ता सापेक्ष सभ्यता शब्द का चिरंतन इतिवृत्त तथा भारतीय सांस्कृतिक आयोजनें की रूपरेखा, पृ. 61
3. डॉ. रामजी उपाध्याय, भारतीय संस्कृति का उत्थान, पृ. 6
4. डॉ. देवराज संस्कृति टिप्पणी, प्र. सम्पा. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग–1, पृ.868
5. गरूण पुराण, अ.,35.51
6. https darshandeepkr.wordpress.com
7. https darshandeepkr.wordpress.com
8. सौन्दर्यसप्तशती, पं. प्रेमनारायण द्विवेदी, पं. प्रेमनारायणद्विवेदीरचनावलिः द्वितीय भागः, राष्टिय संस्कृत संस्थानम्, नवदेहली, संस्करण 2012, श्लोक–692
9. बिहारी सतसई, जगन्नाथदास रत्नाकर, बिहारी रत्नाकर, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2006, श्लोक –692
10. सौ.स.,श्लोक–259
11. बि.स.,श्लोक–259